'परोपकाराय सतां विभूतयः'

परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

'परोपकाराय सतां विभूतयः'

परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

लेखिका : ब्रह्मचारिणी गीता बनर्जी, वाराणसी

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगर २४९१९२

जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम संस्करण : २०१६

(२,००० प्रतियाँ)

द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

Swami Chidananda Birth Centenary Series—72

निःशुल्क वितरणार्थ

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर २४९१९२,
जिला टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit : dlsbooks.org

विषय–सूची

१. परोपकाराय सतां विभूतयः ७

२. माँ आनन्दमयी कन्यापीठ २९

३. प्रेम तथा मानवता के मूर्तिमान् विग्रह ३६

४. सतत स्मरणीय एक शिक्षाप्रद प्रसंग ३९

१. 'परोपकाराय सतां विभूतयः'[१]
परम पूज्य स्वामी श्री चिदानन्द जी महाराज

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
धाराधरो वर्षति नात्महेतोः
परोपकाराय सतां विभूतयः।। (नीति शास्त्र - ६६)

जिस प्रकार नदियाँ स्वयं अपना जल पान नहीं करतीं, वृक्ष स्वयं अपना फल नहीं खाते तथा जलधर अपने लिए नहीं बरसता, उसी प्रकार महापुरुषों का जीवन एवं उनकी सारी विभूतियाँ दूसरों के उपकार के लिए ही होती हैं। सन्त 'बहुजनसुखाय', 'बहुजनहिताय' ही जीवन धारण करते हैं।

ऐसे ही वर्तमान युग के महान् पुरुष थे दिव्य जीवन संघ के परमाध्यक्ष त्यागमूर्ति, तपोमूर्ति, सन्तशिरोमणि स्वामी श्री चिदानन्द सरस्वती जी महाराज। आपके जीवन का प्रत्येक क्षण तथा सम्पूर्ण क्रियाएँ प्राणिमात्र के कल्याण के लिए ही पूर्ण रूप से समर्पित थीं।

स्वामी चिदानन्द जी का जन्म २४ सितम्बर, सन् १९१६ को दाक्षिणात्य में 'मंगलोर' नामक शहर में 'मनोहर विलास' नामक भवन में मातामह के पास हुआ था।

संस्कृत साहित्य में कहा गया है

[१] माँ आनन्दमयी अमृतवार्ता

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसम्वित् सुखसागरेऽस्मिन्
लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।।

(स्कन्द पुराण – कुमार खंड)

अर्थात् जिनका चित्त परमानन्दज्ञान के सुखसागर में परब्रह्म में लीन है, उनके द्वारा ही अपना वंश पवित्र तथा धन्य होता है, उनकी जननी कृतकृत्य हो जाती है। उनसे धरती माता भी पुण्यवती होती है। ऐसे ही चरित्र से सम्पन्न थे स्वामी चिदानन्द जी महाराज।

आपके सदृश महान् आत्मा का स्तवन करते हुए ही गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है

मुद मंगलमय संत समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू।।

(मानस बालकाण्ड दो. १ चौ.४)

सन्तों का समाज आनन्द और कल्याणमय है, जो जगत् में चलता-फिरता तीर्थराज प्रयाग है। पूज्य महाराजश्री के जीवनरूपी प्रयागराज में प्रवाहित होती हुई ज्ञान-भक्ति-कर्म-सरिता की त्रिधारा में अवगाहन कर हम यथार्थ में धन्य होते हैं।

स्वामी चिदानन्द जी का जीवन ही एक महान् आध्यात्मिक ग्रन्थ है। आपके प्रत्येक सद्गुण ही उस विराट् ग्रन्थ के अमूल्य अध्याय हैं और आपके दैनन्दिन महत्कार्य, अद्भुत चमत्कार पूर्ण घटनावली ही उस दिव्य ग्रन्थ का एक-एक पृष्ठ है। पूज्य महाराजश्री के जीवन रूपी इस अपूर्व ग्रन्थ

के यथाशक्ति अनुशीलन से ही मानव सुगमता से दिव्य जीवन की उपलब्धि कर धन्य हो सकता है।

परम पूज्य महाराजश्री के उस महान् जीवनवेद के पृष्ठों को पलटने पर हम देखते हैं उसमें स्वर्णाक्षरों में लिखा है

साधना और साधक

श्री श्री आनन्दमयी माँ ने साधना शब्द का अर्थ करते हुए कहा है ''स्वधन लाभ की चेष्टा ही साधना है। उनका ही सब, उनके ही चरणों में पड़े रहने को छोड़ और कोई उपाय नहीं है। चिन्ता करनी है तो उनकी ही चिन्ता करनी चाहिए।''

साधक को गुरु और ईश्वर के प्रति पूर्ण शरणागति, अटूट श्रद्धा और अपरिमेय विश्वास की आवश्यकता है। साधक को सभी बाधा-विपत्तियों का धीरता के साथ सामना करते हुए अपनी साधना के पथ पर निरन्तर अग्रसर होते रहना चाहिए, जीवनपर्यन्त अभ्यास करते रहना चाहिए। तभी साधक को सफलता मिलती है।

स्वामी चिदानन्द जी महाराजश्री का जीवन एक सच्चे साधक का ज्वलन्त निदर्शन था। आप स्वयं सिद्ध पुरुष होते हुए भी जनशिक्षा के लिए साधक का जीवन व्यतीत करते थे। आप नियमों का कभी उल्लंघन नहीं करते थे, दूसरों से भी दृढ़ता से नियम पालन कराने के कठोर पक्षपाती थे। उन्हें श्री रामकृष्ण परमहंस के वेदान्तवादी गुरुदेव श्री तोतापुरी जी का कथन सदा स्मरण रहता था कि पीतल के पात्र को चमकाने के लिए उसे प्रतिदिन रगड़ना आवश्यक है।

पूज्य महाराजश्री के गुरुदेव श्रद्धेय स्वामी श्री शिवानन्द जी भी कहते थे, ''शरीर गधे की तरह है और मन अन्त समय तक कपिसदृश चंचल। अतः इसके लिए आध्यात्मिक चाबुक और तितिक्षा, तपस्या आदि की छड़ी सदैव तैयार रखनी चाहिए।''

पूज्य महाराजश्री के जीवन में गुरुदेव की आज्ञा का अक्षरशः पालन होते देखा जाता था। आप भी कहते थे, '' यदि आप जीवन्मुक्त हैं तो भी आपको सावधान रहना है।''

पूज्य महाराजश्री के विषय में उनके गुरुदेव ने कहा था, ''स्वामी चिदानन्द जी अपने पूर्व-जन्म में ही एक योगी थे। यह उनका अन्तिम जन्म है। ये जीवन्मुक्त हैं।''

आप जीवन्मुक्ति की उस उच्चावस्था में अवस्थान करते हुए भी अपने को एक साधक तथा गुरुदेव का तुच्छ सेवक मानते थे।

संस्कृत में यह नीतिश्लोक अति प्रसिद्ध है

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।। (हितोपदेश)

दुर्जन मन में कुछ सोचते हैं एवं वाणी से और कुछ दूसरा ही बखानते हैं और करते कुछ और ही हैं। अर्थात् उनकी करनी और कथनी में भिन्नता होती है। परन्तु सज्जनों के मन, वाणी और कर्म में एकता होती है। यही विशेषता परम पूज्य चिदानन्द जी में देखी जाती थी। मधुर-मधुर भाषणों के द्वारा लोगों को एकत्रित किया जा सकता है। किन्तु लोगों को प्रेरित तथा प्रभावित करने के लिए भाषण नहीं, आचरण की आवश्यकता होती है।

स्वामी चिदानन्द जी महाराज जो भी कुछ कहते थे, उसे पहले अपने जीवन में उतारते थे। एक सज्जन ने आपके विषय में ठीक की कहा था, ''यह यति अपनी मान्यताओं का प्रचार करने के बजाय उन्हें अपने जीवन में उतारना अधिक पसन्द करता है।'' तभी आपकी वाणी में इतनी ओजस्विता थी। आपकी वाणी हृदय के अन्तःस्थल को स्पर्श करती थी। आपके अनुभवसिद्ध ओजस्वी उपदेशों से लोगों के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन आता था और दिव्य जीवन की प्राप्ति सहजता से होती थी।

आप सदाचार का पालन, नैतिकता के आचरण पर अत्यधिक जोर देते थे। एक बार आपने भाषण में कहा था ''मेरे अनन्य मित्रो! आध्यात्मिक तुला द्वारा मानव के क्रिया-कलापों की तौल, न केवल की गयी प्रार्थना या उच्चारित मन्त्रों से ही अथवा न केवल जलायी गयी मोमबत्तियों, उतारी गयी आरतियों, बजायी गयी घण्टियों और शास्त्रों के पारायण से ही होती है अपितु मुझे आपको यह स्पष्ट बतलाना है कि आध्यात्मिक तुलाएँ मनुष्य का तौल करती हैं, उसके हृदय में पालित भावनाओं की गुणवत्ता से, उन शब्दों से जो कि आप बोलते हैं और जैसा आप अपने पड़ोसियों को सम्बोधित करते हैं और आपके व्यवहार के प्रत्येक उस सामान्य क्रिया-कलाप से जो प्रभु द्वारा प्रदत्त जीवन में दूसरों के प्रति व्यवहार में आप अपनाते हैं।''

साधनामय साधक के जीवन में अथवा उस परम करुणामय प्रभु के साथ जिन्होंने अपना सम्बन्ध जोड़ लिया है, उनके चलने में, बोलने में, दूसरों के साथ व्यवहार करने में, जीवन की प्रत्येक क्रिया में एक अपूर्व नैसर्गिक सौन्दर्य की छटा प्रस्फुटित होती है, जो दूसरों को स्वभावतः आकर्षित करती है। तभी तो कहा गया है

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता
मित्रेऽवंचकता गुरौ विनयिता चित्तेऽतिगम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽति विज्ञानिता
रूपे सुन्दरता हरौ भजनिता सत्स्वेव संदृश्यते।।

धर्म में तत्परता, वाणी में मधुरता, दान में उत्साह, मित्रों से निष्कपटता, गुरुजनों के प्रति नम्रता, चित्त में गम्भीरता, आचार में पवित्रता, गुण ग्रहण में रसिकता, शास्त्र में विद्वत्ता, रूप में सुन्दरता और हरिस्मरण में लगन ये सब गुण सत्पुरुषों में ही देखे जाते हैं।

उपर्युक्त सभी गुण पूज्य चिदानन्द जी में उपलब्ध थे।

तपस्या

''जीवन सन्त स्वामी चिदानन्द'' नामक महाराजश्री के चरित्र ग्रन्थ के प्रणेता श्री अखिल विनय जी अपनी पुस्तक में लिखते हैं ''कठोर तपस्या का दूसरा नाम 'स्वामी चिदानन्द' था। अप्रैल १९६२ से मई १९६३ तक वे अज्ञातवास में रहे, ज्वार, बाजरा उनका भिक्षा-आहार था। अनिकेत की स्थिति रही। नामदेव, तुकाराम, एकनाथ और ज्ञानेश्वर जैसे सन्तों की साधना का वे अनुसरण करते रहे। तुकाराम के अभंगों की धुन में मस्त रहते। शोलापुर के पास गाणगापुर में गये।'' श्री चिदानन्द जी का जीवन ही तपस्यामात्र था। वे तपस्या के मूर्त विग्रह थे।

'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।'

(कैवल्योपनिषद् श्लोक नं. ३)

कर्म के द्वारा नहीं, सन्तानोत्पत्ति से भी नहीं तथा धन से भी नहीं, केवल त्याग के द्वारा ही प्राचीन काल के ऋषियों ने अमृतत्व की प्राप्ति की।

कैवल्योपनिषद् का यह मन्त्र पूज्य महाराजश्री के जीवन में साकार हो उठा था। आप यथार्थ में औपनिषद् पुरुष थे। आप त्याग के प्रतीक थे। आप घुटनों तक वस्त्र पहनते थे। शरीर पर कभी उत्तरीय के रूप में चादर ग्रहण करते थे कभी वह भी नहीं। एक दिन आपके गुरुदेव ने आपसे मजाक में कहा था, ''ओ जी! अब आप दिव्य जीवन संघ के महासचिव हैं। आप सुन्दर लम्बे वस्त्र क्यों नहीं धारण करते?'' उनका विनीत उत्तर था, ''इन छोटे गमछों से पहाड़ी पर चढ़ने-उतरने में सुविधा रहती है।''

आप सादा आहार करते थे। सादगीपूर्ण जीवन यापन करने के पक्षपाती थे। महात्मा गान्धी के साथ आपके कुछ गुणों में समता देखी जाती थी। आपके साथ पैदल चलते हुए एक भक्त ने कहा था, ''इनकी चाल तो गान्धी जी जैसी है।''

अमानी मानदः

श्री चैतन्य महाप्रभु का एक अति प्रसिद्ध श्लोक है

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

पूज्य महाराजश्री इस श्लोक के जाज्वल्यमान प्रतीक थे। आप अपनी आयु, पद, प्रतिष्ठा की ओर ध्यान न देते हुए सबको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते थे। विनम्रता आपका भूषण था।

उन दिनों वाराणसी में श्री श्री माँ आनन्दमयी कन्यापीठ का स्वर्ण-जयन्ती समारोह का आयोजन चल रहा था। इस अवसर पर पूज्य महाराजश्री वाराणसी में उपस्थित थे। एक दिन कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् आश्रम के हॉल (घर) में पूज्य महाराजश्री ने प्रसन्नतापूर्वक शीघ्रता

से आ कर अपने से अपेक्षाकृत कम वयस्क आश्रम के ही एक ब्रह्मचारी के पैर छू कर प्रणाम किया। यह देख कर सब अवाक् रह गये। बहुत दिनों के पश्चात् मिलने पर हार्दिक अभिनन्दन का आपका यह अनुपम उदाहरण था।

भक्तिमय जीवन

आपका जीवन भक्तिमय था। श्रीमद्भागवत में कहा गया है

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तवनिवास जगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्।। (१०-१०-३८)

भक्त भगवान् से प्रार्थना करते हैं "हे प्रभो! वाणी आपके गुणानुवाद में, श्रवण आपके कथा-श्रवण में, हाथ आपकी सेवा में, मन आपके चरण कमलों के स्मरण में, शीश आपके निवासभूत सारे जगत् के प्रणाम करने में तथा नेत्र आपके चैतन्यमय विग्रह सन्तजनों के दर्शन में लगे रहें।"

पूज्य महाराजश्री के हृदय की प्रार्थना भी यही थी। श्री अखिल विनय जी 'जीवन सन्त स्वामी चिदानन्द' शीर्षक अपने ग्रन्थ में लिखते हैं कि "गृह त्याग कर जब वे (पूज्य महाराजश्री) वेंकटेश्वर के दरबार में पहुँचे तो वे भगवान् वेंकटेश्वर को भेंट चढ़ाना चाहते थे, परन्तु पास में कुछ न होने से उन्होंने एक ठेकेदार से निवेदन किया कि उन्हें मजदूरी पर रख ले। गौरवर्ण, क्षीणकाय और ऊँचे कद से युक्त उक्त सौम्य युवक को देख कर उसने इनकार कर दिया। उसने समझा कि उसके साथ हँसी की जा रही है। जब

स्वामी जी ने विश्वास दिलाया कि वे अपनी कमाई का धन वेंकटेश्वर को अर्पित करना चाहते हैं तो उसने उन्हें मजदूर के रूप में रख लिया। किन्तु इन्होंने सात दिन की मजदूरी का केवल एक रुपया लिया, उसे भगवान् को अर्पित कर आनन्द प्राप्त किया और आगे की राह ली।'' ऐसी ही पूज्य महाराजश्री की भगवान् के प्रति निष्ठा थी।

सेवा ही मूल मन्त्र

आपके जीवन का मूल मन्त्र था सेवा तथा प्राणिमात्र के प्रति प्रेम। आपका सेवाभाव अद्भुत था। रोगियों के प्रति आपकी सहानुभूति विलक्षण थी। कुष्ठ रोगियों की, दरिद्रनारायण की सेवा ही उनके लिए सच्चे अर्थों में प्रभु की सेवा थी। एक बार पूज्य शिवानन्द जी ने आपके लिए कहा था, ''वे डाक्टरों के भी डाक्टर हैं, वे कोढ़ियों के डाक्टर हैं। वे दया के सागर हैं।'' वे किसी की भी अस्वस्थता की खबर पाते ही उसकी सेवा में, उसके उपचार में तुरन्त संलग्न हो जाते थे।

सन् १९८७, फरवरी के महीने में वाराणसी में आपके सभापत्य में श्री श्री माँ आनन्दमयी कन्यापीठ का वार्षिकोत्सव चल रहा था। अनुष्ठान की समाप्ति पर भीड़ के भीतर ही आप जमीन पर बैठ कर आश्रम की एक वयोवृद्धा संन्यासिनी से उनकी शारीरिक व्याधि के विषय में पूछताछ करने लगे। वह संन्यासिनी भी विश्वस्त हृदय से उस मानवता के परमबन्धु को अपनी दर्द भरी कथा सुनाने लगी। स्वामी जी ने उन्हें वचन दिया कि वे उनके लिए ऋषिकेश से औषधि भेज देंगे, और कुछ ही दिनों में उन्हें एक औषधि का पार्सल प्राप्त हुआ।

''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की उदात्त भावना आप में थी।

करुणामय पुरुष

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो
वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जना–
नहेतुनान्यानपि तारयन्तः।। (विवेक चूड़ामणि – ३९)

जिस प्रकार वसन्तऋतु अपनी वासन्तिक आभा से, नवपल्लवतरुलता पुष्पों से सबको आह्लादित करता है, उसी प्रकार सन्त महापुरुष भयंकर संसाररूपी सागर को स्वयं पार कर अपनी अहैतुकी कृपा से इस संसार–सागर में डूबी हुई जनता को पार कर शान्ति तथा परमानन्द प्रदान करते हैं। पूज्य महाराजश्री की गणना ऐसे ही महापुरुषों में होती थी।

आपके गुरुदेव ने आपके विषय में कहा था, ''स्वामी चिदानन्द में करुणा और विनम्रता का प्राचुर्य है।''

व्यावहारिक वेदान्ती

पूज्य महाराजश्री ने वेदान्त के सिद्धान्त को अपने जीवन में उतारा था। आप प्राणिमात्र के भीतर उस परब्रह्म परमात्मा का ही दर्शन करते थे। तभी तो प्राणिमात्र के प्रति आपकी इतनी श्रद्धा, प्रेम तथा आदर की भावना थी।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः।। (११/२/४५)

सम्पूर्ण प्राणिमात्र में जो आत्मस्वरूप भगवान् का दर्शन करता है तथा भगवान् में जो प्राणिमात्र का दर्शन करता है, वही उत्तम भक्त हैं।

श्री श्री आनन्दमयी माँ ने कहा है ''संसार में अश्रद्धा व उपेक्षा की कोई वस्तु नहीं है, वे अनन्त भावों, अनन्त रूपों से अनन्त खेल खेलते हैं। बहु न होने से यह खेल कैसे चले? देखते नहीं प्रकाश और अन्धकार, सुख और दुःख, अग्नि और जल किस प्रकार एक ही शृंखला में बँधे हुए हैं।''

अतः सर्वत्र भगवद्-दर्शन ही मनुष्य मात्र का कर्तव्य है।

सुन्दरता के प्रति जागरूकता

''सत्यं शिवं सुन्दरम्'' जो सत्य है, जो कल्याणमय है एवं सुन्दर है वही परमात्मतत्त्व है। अतः सुन्दरता के भीतर भगवान् का निवास है।

एक विरक्त सन्त होते हुए भी पूज्य महाराजश्री में सौन्दर्य के प्रति अपूर्व चेतनता तथा रुचिसम्पन्न बुद्धि देखी जाती थी। आप अपने चारों ओर स्वच्छ तथा सब कुछ यथास्थान देखना पसन्द करते थे। आपके छोटे से छोटे कार्य में भी एक नैसर्गिक सुन्दरता झलकती थी।

''स्वयं सुन्दर हो कर सुन्दर हृदय आसन में चिर सुन्दर को यदि प्रतिष्ठित कर सको तो सब ही सुन्दर प्रतीत होगा।''

श्री श्री आनन्दमयी माँ की यह वाणी आपमें यथार्थतः फलीभूत होते देखी जाती थी।

जीवन्मुक्त की स्थिति

शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः।
यः सच्चित्तोऽपि निश्चिन्तः स जीवन्मुक्त इष्यते।।

जिसकी संसार-वासना शान्त हो गयी है, जो कलावान् हो कर भी कलाहीन है अर्थात् व्यवहारदृष्टि ऊपर से विकारवान् प्रतीत होता हुआ भी निरन्तर अपने निर्विकार स्वरूप में ही स्थित रहता है तथा जो चित्तयुक्त होने पर भी निश्चिन्त है, वह पुरुष जीवन्मुक्त माना जाता है।

पूज्य महाराजश्री की यही वास्तविक स्थिति थी। बाहर से यद्यपि उनको जगत् से व्यवहार करते देखा जाता था, किन्तु वास्तविक रूप से इस जगत् में आपको किसी से किसी बात की अपेक्षा नहीं थी। वे भीतर से सदा भगवान् से अपने को युक्त रखते थे। अतः भगवान् स्वयं कहते हैं

सन्तोऽनपेक्षाः मच्चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः।
निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः।।

(श्रीमद् भागवत - ११-२६,२७)

अर्थात् सन्तजन किसी प्रकार की इच्छा नहीं करते, वे मुझमें ही चित्त लगाये रहते हैं तथा नम्र, समदर्शी, ममताशून्य, अहंकारहीन, निर्द्वन्द्व एवं संचय न करने वाले होते हैं।

मद्गुरुः श्री जगद्गुरुः

श्री श्री गुरुस्तोत्र में कहा गया है

मन्नाथः श्रीजगन्नाथः मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः।। (गुरु गीता)

इस श्लोक के सारभूत अर्थ को महाराजश्री ने पूर्णरूप से हृदयंगम किया था। वे अपने गुरुदेव परम पूज्य स्वामी श्री शिवानन्द जी के चरणों में पूर्णतः समर्पित थे। आप कहते थे "श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज मेरे

गुरु ही नहीं वरन् मेरे माता-पिता भी हैं। मैं उन्हीं का एक रूप हूँ। मैंने अनुभव किया कि मेरे पीछे उन्हीं की प्रेरणा कार्य कर रही है।'' आप अपने गुरु में जगद्गुरु का दर्शन करते थे। तभी तो आप सभी सम्प्रदाय के किसी भी धर्मावलम्बी सन्त के पास विनीत भाव से निस्संकोच रूप से उपस्थित होते थे।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोर्पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोर्कृपा।। (गुरु गीता)

यह श्लोक आपके जीवन का सर्वस्व था।

श्री श्री आनन्दमयी माँ के सान्निध्य में

कनखल में माँ के आश्रम में पूज्य महाराजश्री ने एक बार स्वयं कहा था कि माँ के साथ आपकी सर्वप्रथम भेंट सन् १९४८ में फरवरी के महीने में वाराणसी आश्रम में हुई थी। उन दिनों वाराणसी आश्रम में तीन वर्ष व्यापी सावित्री यज्ञ चल रहा था। माँ से मिल कर स्वामी जी अत्यन्त प्रसन्न हुए।

पूज्य महाराजश्री तथा दिव्य जीवन संघ के सभी महात्मागण माँ को विशेष आदर की दृष्टि से देखते थे। माँ भी उन्हें पूर्ण मान्यता देती थीं। स्वामी जी ने माँ को जगन्माता के रूप में स्वीकार किया था।

आज दिव्य जीवन संघ के साथ श्री श्री माँ आनन्दमयी आश्रम का अति घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

संयम-सप्ताह में पूज्य महाराजश्री

श्री श्री आनन्दमयी संघ द्वारा प्रति वर्ष संयम सप्ताह महाव्रत का आयोजन किया जाता है। इस उपलक्ष्य में भारत के सभी विशिष्ट

महात्मागण आमन्त्रित होते हैं। पूज्य महाराजश्री प्रायः प्रतिवर्ष संयम-सप्ताह में पधारते थे।

संयम-सप्ताह में पूज्य महाराजश्री का दिव्योपदेश

पूज्य स्वामी श्री चिदानन्द जी ने संयम-सप्ताह के उपलक्ष्य में सन् १९८६ के ११ दिसम्बर को कनखल में यह कथा सुनायी थी

''एक जज थे। वे सदाचारी, कर्तव्यपरायण तथा सत्यवादी थे। परन्तु अपनी जीविका के अनुसार उन्हें अनेक समय निर्दोषी मनुष्यों को भी दोषी साबित कर उन्हें सजा देनी पड़ती थी। अन्ततः उन्हें वैराग्य हो गया। वे अपने काम-काज, घर-बार-परिवार सबका परित्याग कर भगवान् की खोज में निकल पड़े। परन्तु वे संन्यास लेने के पूर्व छः महीने तक साधु-जीवन के अभ्यास में संलग्न हुए। अच्छा भोजन, अच्छा पानी, अच्छी शय्या पर शयन इन सबमें अभ्यस्त थे, किन्तु धीरे-धीरे उन्होंने सब छोड़ दिया और साधु-जीवन के अनुकूल खान-पान का अभ्यास करने लगे। किन्तु संन्यास ले कर जब वे भिक्षा लेने गये तब उन्हें अभिमान होने लगा कि 'मैं तो शिक्षित कुलीन परिवार में जन्मा व्यक्ति हूँ।' बाद में जब वे साधु हो गये, तब श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार जी के अनुरोध से उन्होंने अपना अनुभव लिखा था कि जब उनका जज का अभिमान नहीं जा रहा था तब उन्होंने अभिमान त्यागने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वे सबेरे रोज गंगाजी में स्नान कर घाट पर एक ओर खड़े हो जाते थे और जो भी स्नान करने आते थे, उन्हें साष्टांग दण्डवत् करते थे। इस प्रकार बीस दिन करने के बाद उनका जज साहब का अभिमान छूट गया।''

पूज्य महाराजश्री कहा करते थे ''बीच-बीच में मन का निरीक्षण करना साधक का कर्तव्य है। उन्हें मन के हर चिन्तन को नोट करते रहना चाहिए।''

सन् १९८७ के संयम महाव्रत में पूज्य महाराजश्री ने एक दिन सबके आग्रह करने पर अपने गुरुदेव परम पूज्य स्वामी श्री शिवानन्द जी महाराज के विषय में कहा था। आपने उनके वैराग्य की पराकाष्ठा के सम्बन्ध में बताया कि किस तरह वे चौबीस घण्टे साधना में लगे रहते थे। भिक्षा में प्राप्त रोटियों को एक वृक्ष के गह्वर में रख देते थे और ७-८ दिन तक उन सूखी रोटियों को चूर्ण कर गंगाजल में घोल कर पी जाते थे। पुनः ७-८ दिन बाद एक दिन भिक्षा माँगने जाते थे। निरन्तर साधना का अभ्यास करते थे। उनकी कठोर तपश्चर्या यथार्थतः अनुकरणीय है।

इस प्रकार संयम-सप्ताह में पूज्य महाराजश्री का दिव्योपदेश श्रवण कर सभी धन्य होते थे।

श्री श्री माँ आनन्दमयी कन्यापीठ के वार्षिकोत्सव में पूज्य महाराजश्री

श्री श्री माँ के दिव्य ख्याल के दिग्दर्शन में प्रस्फुटित यह छोटी सी संस्था 'श्री श्री माँ आनन्दमयी कन्यापीठ' है। सन् १९३८ में २६ सितम्बर को कन्यापीठ की स्थापना हुई थी। शिवनगरी काशीधाम में यह प्रतिष्ठित है।

इस संस्था का उद्देश्य है जीवनदीप को आदर्श चरित्ररूपी तेज से प्रज्वलित करना, जिससे एक आदर्श जीवन के प्रकाश में आ कर अनेक जीवन प्रकाशित हो सकें। श्री श्री माँ आनन्दमयी कन्यापीठ के उनचासवें वार्षिकोत्सव का आयोजन किया जा रहा था। सबकी इच्छा थी कि इस

बार पूज्य श्री चिदानन्द जी महाराज को इस अवसर पर आमन्त्रित किया जाये। उनसे प्रार्थना की गयी। उन्होंने इस प्रार्थना को अनुग्रहपूर्वक स्वीकार कर लिया। आप दिनांक १३-२-८७ को सायंकाल पूर्णिमा के दिन सत्यनारायण की पूजा के समय काशी आश्रम पधारे। आपके आते ही आश्रम में चारों ओर आनन्द की लहरें छा गईं। दूसरे दिन प्रातःकाल पूज्य महाराजश्री ने सम्पूर्ण विद्यालय का निरीक्षण किया। वे तीन तल्ले में ठाकुरघर में भी गये।

आश्रम-बालिकाओं के प्रति महाराजश्री का उपदेश

विद्यालय के हॉलघर में कन्यापीठ की छात्राओं को सम्बोधित करते हुए पूज्य महाराजश्री ने कहा

''विद्यार्थी जीवन के मुख्य तीन उद्देश्य हैं (१) विद्यार्जन, (२) सदाचार (पवित्रता), (३) स्वास्थ्य के प्रति ख्याल रखना।

यदि मोक्षमिच्छसि चेत्तात!
विषयान् विषवत् त्यज।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च
सत्यं पीयूषवत् भज ।।

अहिंसा, ब्रह्मचर्य और सत्य ये तीन विद्यार्थियों के लिए अवश्य पालनीय हैं।

''विद्यातुराणां न रुचिर्न निद्रा।''

''रामायण के दो पात्र हनुमान् तथा रावण दोनों गुणों से परिपूर्ण थे। किन्तु इनमें से एक अपने सभी सद्गुणों को प्रभु के चरणों में अर्पण कर

संसार में यशस्वी तथा पूजनीय बने। यही हमारे हनुमान् जी हैं तथा रावण सभी गुणों के द्वारा अपना ही तर्पण कर संसार में निन्दनीय बना। उनका दिया हुआ उन्हीं को समर्पण करना चाहिए। मनुष्य को हनुमान्सदृश्य तेजस्वी तथा सदाचार के पथ पर दृढ़ होना चाहिए।''

''एक बार कबीरदास जी नदी के किनारे वृक्ष के नीचे ध्यान में मस्त हो कर बैठे थे। उधर से कुछ रईस लोग निकले, जो अपने-आपको बहुत बड़ा आदमी समझते थे। उन लोगों ने कबीरदास जी को देख कर कहा, ''अरे देखो, यह निकम्मा साधु बैठा है।'' लोग साधु से बहुत चिढ़ते हैं। लोगों का कहना है कि साधु कुछ काम-काज नहीं करते, आलसी होते हैं। इन लोगों ने भी कबीरदास जी को देख कर उनके पास जा कर कहा, ''अरे! तुम यहाँ चुप बैठे क्या कर रहे हो?'' कबीरदास जी कुछ बोले नहीं, वैसे ही चुप बैठे रहे। लोगों के पुनः कहने पर भी वे चुप रहे। अन्त में किसी ने उनके शरीर को छू कर धक्का दिया, तब कबीरदास जी उनकी ओर एक बार देख कर पुनः चुप बैठ गये। वे इन लोगों के आने का कारण समझ गये थे। पुनः-पुनः लोगों के छेड़ने पर कबीरदास जी बोले, ''अरे, मुझे छेड़ो नहीं। मैं बहुत व्यस्त हूँ। मुझे काम करने दो।'' तब उन लोगों ने कहा ''अरे! तुम तो बैठे हो। क्या काम कर रहे हो?'' तब कबीरदास जी बोले, ''मैं तोड़ने और जोड़ने में व्यस्त हूँ।'' इसके कई अर्थ हो सकते हैं ''नश्वर पदार्थों से आसक्ति तोड़ कर मन को भगवान् से जोड़ना; अवगुणों को तोड़ कर सद्गुणों को जोड़ना।''

''यदि किसी से या सरकार से कोई ऊसर जमीन प्राप्त हो तो हम उसमें खेती करने के लिए जोतते हैं। जमीन को समतल करते हैं। कंकड़-पत्थर को उठा कर फेंक देते हैं। फिर बीजारोपण करते हैं, उसी

प्रकार हृदय में भगवान् को बसाने के लिए आत्मशोधन आवश्यक है। हृदय से अवगुणों को दूर कर सद्गुणों का वपन करना चाहिए। इसके लिए रोज रात्रि में सोते समय आत्मानुसन्धान-आत्मानुध्यान करना चाहिए। आज मैंने कौन से दोष किये, किसी से कटु वचन तो नहीं कहा। क्रोध तो नहीं किया।'' ऐसा विचार करना चाहिए। प्रारम्भ में तो मनुष्य को अभ्यास न होने से कुछ समझ में नहीं आयेगा। परन्तु कुछ दिन ऐसे विचार करने पर बाद में ध्यान आयेगा कि ''ओह! मैंने आज दिन में दस बजे किसी से कटु वचन बोल दिया। मैं बहुत जल्दी क्रोध के आवेश में आ जाता हूँ। मुझे धीरज, सहनशीलता तथा शान्ति रखनी चाहिए।'' इस प्रकार आत्मानुसन्धान से हमारे हृदय में दुर्गुणों के स्थान पर सद्गुण आ जायेंगे।''

''बारह महीने में से मनुष्य को हरेक महीने के लिए एक-एक सद्गुण का चयन करना चाहिए तथा उस महीने में उसी का अभ्यास करना चाहिए। जैसे जनवरी में सत्य का, फरवरी में अहिंसा का, मार्च में अक्रोध इत्यादि का। इस प्रकार बारह महीने में बारह गुण आ जायेंगे। मनुष्य प्रशंसनीय बन सकता है। ठीक अभ्यास का पालन न होने पर मनुष्य को अपने आप ही कोई सजा लेनी चाहिए।''

''नीच मनुष्य विघ्न के भय से कोई महान् कार्य का संकल्प ही नहीं करते। मध्यम कोटि के लोग आरम्भ करके विघ्न के भय से बीच में ही आरम्भ किये हुए कर्म को छोड़ देते हैं। उत्तम मनुष्य बाधाएँ आने पर भी अपने महान् प्रारम्भ किये हुए कर्म को कभी नहीं छोड़ते।''

पूज्य महाराजश्री के इन सब उपदेशों को छोटी-छोटी बालिकाएँ बहुत ध्यान से सुन रही थीं।

दिनांक १५-२-८७ को पूज्य महाराजश्री के सभापतित्व में कन्यापीठ का वार्षिकोत्सव बड़े ही भव्य रूप से सम्पन्न हुआ। आपके ही करकमलों द्वारा छात्राओं को पारितोषिक वितरण किया गया।

कन्यापीठ के वार्षिकोत्सव में सभापति के रूप में महाराजश्री का भाषण

सभापति के भाषण में आपने कहा ''आज के इस आनन्दमय पवित्र परिवेश में ये जो उत्तम कार्यक्रम हुए हैं यह सब आगामी स्वर्णजयन्ती की पूर्व सन्ध्या है। यहाँ जो आनन्द की लहरें उठ रही हैं, उसी से श्री श्री माँ की दिव्य उपस्थिति प्रत्यक्ष प्रमाणित हो रही है, यह मैं आपको सत्य कह रहा हूँ। श्री श्री माँ के ख्याल से जिस संस्था की स्थापना हुई है, वह कभी छोटी नहीं हो सकती, वह महान् है। यहाँ पर बाल्यावस्था से ही जो बुनियाद तैयार हो रही है, वह भावी जीवन की आधारशिला है। यदि आज यह बुनियाद सुदृढ़ बन जायेगी तो जीवन का अभ्युदय सुलभ हो जायेगा, परोपकार धर्म का जीवन है। इस विद्यालय में भौतिक विद्या के साथ जो भागवती शिक्षा भी दी जाती है, वह सत्य ही सराहनीय है। यहाँ के विद्यार्थी ही भारत के भविष्य हैं। यह संस्था भावी भारत के पथ-प्रदर्शन के लिए दीपकतुल्य है।''

कन्यापीठ की स्वर्णजयन्ती में महाराजश्री का योगदान

सन् १९८८ ई. अक्टूबर महीने में शारदीया नवरात्रि के अवसर पर कन्यापीठ की स्वर्णजयन्ती आयोजित हुई। इस उपलक्ष्य में वाराणसी आश्रम में दुर्गापूजा भी अनुष्ठित हुई। स्वर्णजयन्ती में पूज्य महाराजश्री का सक्रिय योगदान रहा। पूज्य महाराजश्री दुर्गापूजा की अष्टमी के दिन वाराणसी आश्रम पधारे। कन्याओं ने वेदपाठ के द्वारा आपका स्वागत किया। २१ अक्टूबर को प्रातःकाल महाराजश्री तथा अन्य महात्माओं की उपस्थिति में आनन्दज्योतिर्मन्दिर में पद्मवेदिका पर माँ की स्वर्णिम तीन

मूर्तियों को विराजित किया गया। २१, २२, २३ अक्टूबर में स्वर्णजयन्ती के त्रिदिवसीय कार्यक्रम में पूज्य महाराजश्री कभी सभापति तो कभी मुख्य अतिथि हुए। स्वर्णजयन्ती की स्मारिका 'आनन्द मन्दाकिनी' का विमोचन आपके करकमलों द्वारा ही हुआ।

'कन्यापीठ की पुकार' शीर्षक महाराजश्री का लेख

पूज्य महाराजश्री ने स्वर्णजयन्ती के अवसर पर 'Call of the Kanyapeeth' शीर्षक से अँगरेजी भाषा में अतिगरिमामय एक लेख लिख कर उसकी हजार प्रतियाँ छपवा कर भक्तों के बीच वितरित करवाईं, जिसका हिन्दी अनुवाद कन्यापीठ की अध्यक्ष सुश्री डाक्टर पद्मा मिश्रा ने किया। हिन्दी में इस लेख का नाम था 'कन्यापीठ की पुकार'।

इस लेख के प्रारम्भ में पूज्य महाराजश्री ने लिखा है

''भगवान् काशी विश्वनाथ की कृपा और आशीष का इस पवित्र कन्यापीठ, इसकी छात्राओं, अध्यापिकाओं एवं शुभ स्वर्णजयन्ती समारोह पर प्रभूत वर्षण हो। इस सब सुखद तथा पवित्र अनुष्ठानों पर श्री श्री माँ आनन्दमयी की कृपा दृष्टि है।....''

''...हमारा धर्म, हमारी संस्कृति, हमारे आदर्श तथा लक्ष्य संस्कृत भाषा और साहित्य की अनुपम निधि में निहित है। कन्यापीठ यह सिद्ध कर रहा है कि संस्कृत जीवित भाषा है और इसका अध्ययन तथा अधिगम उस ज्ञानप्राप्ति का नहीं अपितु, हमारे उच्च आदर्श एवं संस्कृति के पुनरुत्थान का भी प्रमुख मार्ग है।''

श्री पूज्य महाराजश्री ने स्वर्णजयन्ती के अवसर पर स्वर्णिम कागज से बँधा हुआ एक-एक पैकेट यहाँ की छात्राओं तथा अध्यापिकाओं को उपहार के रूप में प्रदान किया। उन पैकेटों में फल, मेवे आदि थे। पूज्य महाराजश्री के कथनानुसार ही आदरणीया गुरुप्रिया दीदी के चित्र को इस अवसर पर स्वर्णिम कागजों से सजाया गया था।

प्रतिवार्षिकोत्सव में योगदान

पूज्य महाराजश्री सन् १९८७ से २००१ तक प्रत्येक वार्षिकोत्सव में वाराणसी पधारे। उन्हीं के सभापतित्व में कन्यापीठ के वार्षिकोत्सव गरिमामय ढंग से सम्पन्न हुए। उनके करकमलों से पुरस्कार प्राप्त कर बालिकाएँ धन्य हुईं।

श्री श्री माँ के शतवर्ष के अनुष्ठानों में योगदान

१९९५-९६ ई. में श्री श्री माँ के शतवर्ष के अवसर पर बांग्लादेश से ले कर भारत के प्रायः प्रत्येक स्थलों में अनुष्ठित प्रत्येक कार्यक्रमों में स्वामी जी की दिव्य उपस्थित भक्तों की प्रेरणा का मुख्य स्रोत रही।

आनन्दज्योतिर्मन्दिर की रजत जयन्ती

वाराणसी में आनन्दज्योतिर्मन्दिर की रजत जयन्ती के अवसर पर १९९३ ई. में पूज्य महाराजश्री वाराणसी पधारे। आपके ही निर्देश से १०८ बाल-गोपालों की अर्चना की गयी। गोपाल मन्दिर के शिखर को आलोक मालाओं से सुसज्जित किया गया।

आदरणीया गुरुप्रिया दीदी का शतवर्ष तथा कन्यापीठ की हीरक जयन्ती

१९९९ ई. में पूज्य महाराजश्री का सक्रिय योगदान रहा। आदरणीया गुरुप्रिया दीदी के शतवर्षीय अनुष्ठान तथा कन्यापीठ के हीरक जयन्ती समारोह में आपकी दिव्य उपस्थिति में ही ये उत्सव मनाये गये। आपके करकमलों द्वारा 'ब्रह्मचारिणी गुरुप्रिया' शीर्षक स्मारिका ग्रन्थ का विमोचन हुआ।

देहरादून से पूज्य महाराजश्री का कृपा–प्रभाव

२००१ ई. के बाद जब पूज्य महाराजश्री शारीरिक अस्वस्थता के कारण वाराणसी नहीं आ सके, तब भी निरन्तर सहयोगिता के द्वारा कन्यापीठ के प्रति उनकी कृपादृष्टि बनी रही। पानुदा तथा कन्याओं के देहरादून जाने पर वे पूर्व की भाँति कीर्तन, उपदेश तथा प्रसाद प्रदान कर कन्याओं को आनन्दित तथा धन्य करते थे।

वन्देऽहं श्रीचिदानन्दं यतीन्द्रकुलभूषणम्।
दिव्यजीवनसंघोऽयं येन भुवि प्रसारितः।।
जयतु श्रीचिदानन्दः शिवानन्दपदानुगः।
जयतु दिव्यसंघश्च दिव्यजीवनदायकः।।

२. 'माँ आनन्दमयी कन्यापीठ' परम आदरणीय स्वामी जी महाराज की कृपाधन्य एक संस्था

संत शिरोमणि परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज ऐसे संतों की श्रेणी में आते हैं जिनकी महिमा मानस की पंक्तियाँ गाती हैं

''बंदउ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ।।''

विश्ववरेण्या श्री श्री माँ आनन्दमयी के साथ परम आदरणीय परम श्रद्धेय श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज का सन् १९४८ से ले कर १९८२ तक सुदीर्घ ३४ वर्षों से भी अधिक समय का अति मधुर आत्मिक सम्बन्ध रहा। यह अब सर्वजनविदित है। परम पूज्य स्वामी जी की श्री श्री माँ के प्रति अपार श्रद्धा थी। अत: श्री श्री माँ के ही दिव्य ख्याल से प्रस्फुटित इस संस्था को उत्तरकाल में स्वामी जी का अनमोल स्नेहाशीर्वाद निरन्तर प्राप्त होता रहा। यह भगवत्स्वरूपिणी श्री श्री माँ की अपरिसीम कृपा का ही मूर्त स्वरूप है, यह नि:सन्देह है।

कन्यापीठ की प्रेरणा श्री श्री माँ के ही दिव्य ख्याल से प्रस्फुटित हुई थी, जिसको श्री श्री माँ की अनन्य सेविका ब्रह्मचारिणी गुरुप्रिया 'दीदी' ने मातृकृपा-वारि से सींच कर वर्तमान रूप प्रदान किया। सन् १९३८ में हरिद्वार में गंगातट पर श्री श्री माँ के पवित्र सान्निध्य में इस संस्था का बीजारोपण हुआ था। सन् १९४५ में वाराणसी में गंगातट पर श्री श्री माँ के

आश्रम के लिए भूमि प्राप्ति के बाद हरिद्वार में अंकुरित इस पौधे को ज्ञान की नगरी, संस्कृत वाङ्मय की राजधानी काशी में 'श्री श्री माँ आनन्दमयी कन्यापीठ' के नाम से प्रतिष्ठित किया गया। कालांतर में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय (वर्तमान सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) से संस्था को आचार्य तक की मान्यता प्राप्त हुई। मान्यता प्रदान कराने का श्रेय देश के मूर्धन्य विद्वान् काशी के चल-विश्वनाथ महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज जी को जाता है। समय के साथ-साथ संस्था विकसित हुई। यहाँ की छात्रायें दर्शन, वेदान्त, पुराण आदि विविध विषयों में योग्यता के साथ आचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण करती रहीं। किसी-किसी ने स्वर्णपदक प्राप्त कर संस्था का गौरव बढ़ाया। आचार्य के उपरान्त शोध-कार्य कर विद्या-वारिधि एवं पी-एच०डी० की उपाधि पाने का गौरव भी संस्था की स्नातिकाओं को प्राप्त हुआ। इस संस्था का उद्देश्य है : जीवनदीप को आदर्श चरित्र रूपी तेज से प्रज्वलित करना, जिससे एक आदर्श जीवन के प्रकाश में आ कर अनेक जीवन प्रकाशित हो सके। संस्था के सम्बन्ध में श्री श्री माँ की दिव्य वाणी ''बाहर पढ़ने-लिखने के लिए अनेक स्कूल-कॉलेज हैं, याद रखना यहाँ का उद्देश्य है आदर्श चरित्र गठन।''

सन् १९८२, अगस्त महीने में श्री श्री माँ के शरीर के अव्यक्त धाम में प्रवेश के उपरान्त कन्यापीठ के वार्षिक उत्सव का कार्यक्रम कुछ वर्षों तक स्थगित रहा। कन्यापीठ के अनुकूल एक वैसे आदर्श पुरुष की आवश्यकता थी, जो श्री श्री माँ के दिव्य आदर्शों को कन्यापीठ की ब्रह्मचारिणियों में अनुप्रेरित करने का सामर्थ्य रख सके। ऐसी स्थिति में श्री श्री माँ के प्रति अपरिसीम श्रद्धा रखने वाले परम पूज्य स्वामी जी महाराज का नाम ही सबके मानस-पटल पर अंकित हुआ।

सन् १९८६ की बात है। श्री श्री माँ के कनखल आश्रम में संयम-सप्ताह का कार्यक्रम चल रहा था। एक दिन प्रात:काल पूज्य स्वामी जी श्री श्री माँ के गंगा-तटवर्ती भवन के बाहर बरामदे में बैठे थे। उस समय संयम-सप्ताह में सम्मिलित होने के लिए कन्यापीठ की कुछ वरिष्ठ अध्यापिकाएँ तथा कतिपय कन्यायें जो कनखल में उपस्थित थीं, वे स्वामी जी को प्रणाम करने के लिए उस स्थान पर गईं। श्रद्धेय ब्रह्मचारी श्री पानुदा भी उनके साथ रहे। उसी अवसर पर कन्यापीठ की ओर से सबने सम्मिलित रूप से पूज्य स्वामी जी से वाराणसी में आ कर वार्षिक उत्सव में सम्मिलित होने के लिए हार्दिक प्रार्थना की। इसी अवसर पर श्री पानुदा ने विनम्र भाव से स्वामी जी से निवेदन किया ''माँ के दिव्य आदर्श तथा प्रत्यक्ष निर्देशन से कन्यापीठ इतने वर्षों तक चल रहा था; परन्तु आज माँ स्थूल रूप में कन्यापीठ की लड़कियों के सामने उपस्थित नहीं हैं। इस समय कन्याओं के सामने एक आदर्श पुरुष की विशेष आवश्यकता है, जिनको अपने सामने रख कर कन्याएँ जीवन यापन कर सकती हैं।'' पूज्य स्वामी जी ने यह बात बहुत गम्भीर भाव से हृदय में ग्रहण कर धीरे से कहा "Yes, you are correct." पूज्य स्वामी जी के हृदय में यह बात सम्भवत: गम्भीर रूप से बैठ गई, जिसके फलस्वरूप उसी समय से स्वामी जी के साथ कन्यापीठ का एक गम्भीर सम्बन्ध स्थापित हो गया।

सन् १९८७ के प्रारम्भ में कन्यापीठ के वार्षिकोत्सव का नये रूप से आयोजन किया जा रहा था। पूज्य स्वामी जी को उक्त आशय पर विनम्र निवेदन किया गया, क्योंकि सबकी इच्छा थी कि पूज्य स्वामी जी इस अवसर पर वाराणसी में पधार कर कन्यापीठ की कन्याओं को आशीर्वाद प्रदान करें तथा कन्यापीठ की बाल ब्रह्मचारिणियाँ स्वामी जी के श्री

करकमलों से पुरस्कार प्राप्त कर अपने को धन्य महसूस करें। कन्यापीठ की विशेष प्रार्थना को स्वामी जी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। दिनांक १३ फरवरी, १९८७ को पूर्णमासी के दिन शाम के समय स्वामी जी आश्रम में पधारे। आपके आते ही आश्रम तथा कन्यापीठ के चारों ओर आनन्द की लहरें छा गईं। इसी वर्ष से पूज्य स्वामी जी का सुदीर्घ १५ वर्षों तक लगातार कन्यापीठ के वार्षिकोत्सव के समय उपस्थित रह कर सभी को अपने स्नेहाशीर्वाद से धन्य करने का सिलसिला प्रारम्भ हुआ।

१४ फरवरी प्रातःकाल पूज्य स्वामी जी ने सर्वप्रथम कन्यापीठ में प्रवेश कर कन्यापीठ का सब-कुछ अच्छी तरह से निरीक्षण किया। आपने तीसरी मंजिल में कन्यापीठ के पूजा-अर्चना के स्थान को भी देखा। स्वामी जी बहुत ही प्रसन्न मुद्रा में रहे । कन्यापीठ के सभाकक्ष में छात्राओं को बहुत ही प्रेम से सम्बोधित किया।

सन् १९८८ के २६ सितम्बर को कन्यापीठ की स्थापना का ५० वाँ वर्ष पूर्ण हुआ था। इस उपलक्ष्य में दिनांक २१,२२ व २३ अक्टूबर को तीन दिन व्यापी स्वर्णजयन्ती महोत्सव का कार्यक्रम मनाया गया, जिसमें कृपालु पूज्य स्वामी जी वाराणसी में पुनः पधारे एवं इस उपलक्ष्य में 'Call of the Kanyapeeth' नामक छोटी-सी पुस्तिका स्वयं छपवा कर अपने हाथों से परमानन्द के साथ सबको प्रदान की। इसके पश्चात् जब देशों-विदेशों में पूज्य स्वामी जी की ७५ वीं जयन्ती अमृत महोत्सव मनाया जा रहा था, उस समय भी कन्यापीठ की कन्याओं की हार्दिक प्रार्थना पर पू० स्वामी जी ने मार्च १९९१ के पहले हफ्ते में वाराणसी में पधार कर कन्याओं को धन्य किया। इस अवसर पर छोटी-छोटी कन्याओं ने भी विशेष भाव से अनुप्रेरित हो कर एक विशिष्ट माला बनाई थी, जिसको अपने गले में धारण

कर स्वामी जी महाराज आनन्दविभोर हो उठे। उस माला को स्वामी जी विशेष प्रेमपूर्वक साथ ले गये और ऋषिकेश के 'गुरु निवास' में उन्होंने उसे सुरक्षित रखा। इसके उपरान्त कन्यापीठ की ओर से एक विशेष अभिनन्दन-पत्र भी बना कर पूज्य स्वामी जी के पास ऋषिकेश में भेजा गया था जिसको प्राप्त कर स्वामी जी ने विशेष प्रसन्न हो कर अपने हाथ से लिख कर उसकी प्राप्ति की स्वीकृति दी।

वाराणसी आश्रम स्थित आनन्दज्योतिर्मन्दिर की रजत जयन्ती के अवसर पर भी १९९३ के अप्रैल महीने में पूज्य स्वामी जी वाराणसी पधारे। आनन्दज्योतिर्मन्दिर में संस्थापित श्री श्री गोपाल जी के साथ स्वामी जी का एक विशिष्ट सम्बन्ध रहा। आपके ही निर्देशन से उस समय १०८ बाल गोपाल की विशेष अर्चना की गई, जो एक अपूर्व दृश्य रहा। स्वामी जी स्वयं उपस्थित रह कर निर्देशन देते रहे। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि पूज्य स्वामी जी का श्री श्री गोपाल जी के साथ जो एक विशेष आत्मीय सम्बन्ध रहा उसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि कालान्तर में जब स्वामी जी देहरादून में कई वर्षों तक अस्वस्थ हो कर रहे उस समय भी श्रद्धेय पानुदा जब-जब स्वामी जी से देहरादून शांति निवास में मिलते थे, स्वामी जी हमेशा प्रसन्न मुद्रा में पूछते थे ''गोपाल जी कैसे हैं?''

सन् २००१ के फरवरी माह में स्वामी जी कन्यापीठ में अन्तिम बार पधारे। इस बार भी कन्यापीठ के वार्षिक उत्सव के उपलक्ष्य में उत्तर प्रदेश के तदानीन्तन राज्यपाल डा० विष्णुकान्त शास्त्री जी की उपस्थिति में पूज्य स्वामी जी के करकमलों से कन्याओं को वार्षिक पुरस्कार लेने का अवसर प्राप्त हुआ। परन्तु पूज्य स्वामी जी शारीरिक अस्वस्थता के कारण इसके पश्चात् जब स्वयं और वाराणसी नहीं आ सके, तब भी कन्यापीठ के प्रति

उनका विशेष ख्याल तथा कृपा-दृष्टि निरन्तर बनी रही। इस विषय का साक्षात् प्रमाण पूज्य स्वामी जी की स्वहस्तलिखित या स्वहस्ताक्षरित पत्रावली। पूज्य स्वामी जी ने दिव्यधाम में प्रवेश के करीब छ: महीना पहले भी ७ फरवरी, २००८ को पत्र भेजा था, वही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह लिखना शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी कि श्रद्धेय पानुदा के प्रति पूज्य स्वामी जी की एक अभूतपूर्व स्नेहदृष्टि निरन्तर बनी रही। श्रद्धेय पानुदा का पूज्य स्वामी जी के पास प्राय: अवारित द्वार रहा, जिसको देख कर सभी लोग आश्चर्यचकित होते थे। पूज्य स्वामी जी ने जब किसी से भी टेलीफोन से वार्तालाप करना बन्द कर दिए थे, तब भी अपने ख्याल से पानुदा से कभी-कभी टेलीफोन के माध्यम से कन्यापीठ की कन्याओं की कुशलता के बारे में पूछते रहे। जब-जब वाराणसी से कन्यापीठ की कुछ कन्यायें तथा वरिष्ट अध्यापिकाएँ कनखल जाती थीं, तब-तब विशेष अस्वस्थता के होते हुए भी पूज्य स्वामी जी पानुदा के माध्यम से उनके कनखल में आगमन की सूचना पा कर विशेष आनन्द के साथ सबको अपने पास शांति निवास, देहरादून में बुला लेते थे। दीर्घ समय तक कन्याओं के साथ भजन, कीर्तन व विभिन्न प्रकार के उपदेश प्रदान कर सभी को आनन्दित तथा धन्य करते थे। पूज्य स्वामी जी अपने श्रीहस्त से उपस्थित सबको परमानन्द के साथ प्रसाद दे कर स्वयं विशेष प्रफुल्लित होते थे। यही नहीं कई बार पूज्य स्वामी जी अपने विचित्र ख्याल से देहरादून से वाराणसी में सभी कन्याओं के लिए प्रसाद भेजते थे।

सन् २००७ नवम्बर महीने में भी पूज्य स्वामी जी विशेष अस्वस्थ रहते हुए भी श्री पानुदा के साथ हम लोगों को शांति निवास में अपने कक्ष में बुला कर दीर्घ समय तक हम लोगों से वार्तालाप करते रहे, श्री श्री माँ के

साथ स्वामी जी की अति पुरातन घटनाओं का वर्णन करते रहे। जिसे देख कर स्वामी जी के सेवक महात्मावृन्द आश्चर्यचकित रह गये कि उस समय अत्यन्त अस्वस्थता के बीच में भी पूज्य स्वामी जी ने किस तरह कन्यापीठ की कन्याओं के साथ आनन्दविभोर हो कर घण्टों भर प्रसन्न मुद्रा में व्यतीत किए। यही हैं हमारे परम आदरणीय परम श्रद्धेय, आदर्श पुरुष पूज्य स्वामी जी महाराज।

सन् २००८ के १६ मई को जब पूज्य स्वामी जी विशेष अस्वस्थता के कारण शय्या में सम्पूर्ण शायित रहे, तब भी श्रद्धेय पानुदा से दीर्घ समय तक श्री श्री माँ की विभिन्न लीलाओं का प्रसंग तथा कब, कहाँ और किस प्रकार से श्री श्री माँ का दर्शन प्राप्त हुआ था एवं कन्यापीठ की कन्याओं के विषय में बारम्बार अपना दिव्य ख्याल व्यक्त कर रहे थे।

आज आदरणीय स्वामी जी के स्नेहाशीर्वाद को स्मरण कर हम श्री माँ की अपरम्पार करुणाधारा में अभिषिक्त हो रहे हैं। पू० स्वामी जी तथा श्री माँ के चरणों में कोटिश: नमन करते हुए तथा पू० स्वामी जी के चरणों में यह श्रद्धा-सुमन अर्पण करते हुए हम यही प्रार्थना करते हैं कि आप हमें परमार्थ-पथ के प्रति अग्रसर होने के लिए यथार्थ शक्ति प्रदान करें!

३. प्रेम तथा मानवता के मूर्तिमान् विग्रह स्वामी चिदानन्द जी महाराज

त्याग, तपस्या, करुणा, प्रेम तथा मानवता के मूर्तिमान् विग्रह, अतिप्रसिद्ध दिव्य जीवन संघ के परमाध्यक्ष स्वामी चिदानन्द जी महाराज के सद्गुरुदेव परम श्रद्धेय श्री श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी की अति स्पष्ट उक्ति है ''स्वामी चिदानन्द जीवन्मुक्त पुरुष हैं। पूर्व-जन्म में भी आप एक योगी थे। यह आपका अन्तिम जन्म है।''

प्रचुर वैभवों में स्वामी जी का शैशव व्यतीत होने पर भी स्वामी जी में बाल्यकाल से ही एक स्वभावसिद्ध वैराग्य परिलक्षित होता था। भगवान् को प्राप्त करने की तीव्र लालसा के कारण कम उम्र में ही आपने घर छोड़ दिया था। भगवान् की खोज में अनेक जगह घूमते हुए अन्त में आपको ऋषिकेश में दिव्य जीवन संघ के प्रतिष्ठाता पूज्य स्वामी श्री शिवानन्द जी महाराज का साक्षात्कार प्राप्त हुआ। योग्य गुरु ने अपने योग्यतम शिष्य को पहचान लिया। वे समझ गये कि यह युवक ही एक दिन भविष्य में आपका आध्यात्मिक उत्तराधिकारी होगा। शिष्य भी अपने परम आश्रय का लाभ प्राप्त कर धन्य हुआ।

अब प्रारम्भ हुआ स्वामी जी के जीवन का एक स्वर्णिम अध्याय। सेवा ही थी उनके जीवन का मूलमन्त्र। जीवों के प्रति करुणा तथा दया के आप अथाह सागर थे। गुरुदेव की सेवा तथा आश्रम के विभिन्न कार्यों को सम्भालते हुए भी आपने स्वेच्छा से रोगियों की सेवा का भार ग्रहण किया। कुष्ठ रोगियों की सेवा को ही आप भगवान् की सेवा मानते थे। आप जो भी

काम करते अतिशय निपुणता के साथ करते थे। छोटे-से-छोटे कामों में भी आपकी निपुणता परिलक्षित होती थी। उनमें अपरिसीम सौन्दर्य-बोध था। आपकी संगठन-मूलक कर्मक्षमता, सबके प्रति समभाव तथा सहानुभूति पूर्ण हार्दिक भावना को देख गुरुदेव ने स्वामी जी की इच्छा न रहने पर भी उन्हें दिव्य जीवन संघ के महासचिव के पद पर अधिष्ठित किया। गुरुदेव के ब्रह्मलीन होने पर सर्वसम्मति से आपने दिव्य जीवन संघ के परमाध्यक्ष के पद को अलंकृत किया। पृथ्वी के विभिन्न स्थलों पर जा कर आपने दिव्य जीवन के दिव्य सन्देशों का प्रचार किया। हजारों की संख्या में लोगों को दिव्य उपदेश प्रदान कर स्वामी जी भगवान् की ओर प्रेरित करते थे। किन्तु उनके सहजात वैराग्य, निरभिमान व्यक्तित्व तथा महानता को इस उच्चतम पद की मर्यादा ने कभी भी किंचित् स्पर्श तक नहीं किया, अपितु उनका व्यक्तित्व और भी उज्ज्वलतर होता गया।

१९४८ ई. में फरवरी के महीने में वाराणसी में माँ के आश्रम में स्वामी जी को सर्वप्रथम श्री श्री माँ का दर्शन प्राप्त हुआ। उन दिनों आश्रम में 'अखण्ड सावित्री महायज्ञ' चल रहा था। श्री श्री माँ के प्रथम दर्शन से ही स्वामी जी को श्री श्री माँ के यथार्थ स्वरूप का परिचय प्राप्त हुआ तथा माँ को आपने जगन्माता के रूप में ग्रहण किया। अतः जब भी उन्हें माँ का दर्शन प्राप्त होता था, उसी समय तुरन्त वे भूमि में लेट कर माँ को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते थे। यदि मार्ग में ही माँ का दर्शन प्राप्त होता, तो मार्ग में ही वे माँ को साष्टांग प्रणाम करते थे। दीर्घ समय तक आश्रम के अनेक उत्सवों में, श्री श्री माँ के जयन्ती महोत्सव तथा संयम सप्ताह में आप विशेष रूप से उपस्थित रहने की कोशिश करते थे। संयम सप्ताह के प्रधान आकर्षण का विषय ही था पूज्य स्वामी जी का दिव्य उपदेश श्रवण। उनके

दिव्य अनुभूतिपूर्ण उपदेशों को श्रवण कर व्रतीगण उद्‌बुद्ध हो कर अनुप्राणित होते थे। संयम के ७ दिन स्वामी जी आश्रम में आ कर रहने की कोशिश करते थे।

श्री श्री माँ के जन्मशती वर्ष (१९९५-९६ ई.) के अनुष्ठानों में स्वामी जी ने सक्रिय योगदान किया। भारत के विभिन्न आश्रमों में कनखल, नैमिषारण्य, विन्ध्याचल, वाराणसी, यहाँ तक कि सुदूर त्रिपुरा प्रान्त की राजधानी अगरतला में शतवार्षिकी अनुष्ठान में स्वामी जी आग्रह सहित पधारे। स्वामी जी की दिव्य उपस्थिति से सभी प्रोत्साहित हुए तथा सर्वत्र सम्पूर्ण उत्सव गरिमामण्डित हो उठे। उसी समय स्वामी जी अतिशय आग्रह के साथ बांग्लादेश भी गये। उन्होंने माँ के पवित्र जन्मस्थान का दर्शन किया एवं ढाका सिद्धेश्वरी आश्रम में भी गये। विशेष रूप के कनखल स्थित आश्रम, वाराणसी आश्रम एवं माँ आनन्दमयी कन्यापीठ के साथ आपका एक घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। अनेक बार वे इन सब संस्थानों में आये।

आज सम्पूर्ण आश्रमवासी गण परम पूज्य स्वामी जी के चरणों में कोटिशः नमनः करते हुए उनके चरणों में यह श्रद्धांजलि अर्पण करते हैं। अमर आत्मा दिव्य आत्मा स्वामी जी सबके हृदयों में सदा-सदा के लिए चिर अमर रहेंगे।

४. सतत स्मरणीय एक शिक्षाप्रद प्रसंग

(ब्रह्मचारी श्री पानु जी महाराज)

वर्ष १९६६ की जनवरी का महीना था। पूज्य श्री श्री आनन्दमयी माँ की जन्म शताब्दी के समारोह का समय चल रहा था। मेरी गहन प्रार्थना पर परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज अत्यन्त कृपापूर्वक श्री माँ के विभिन्न आश्रमों में होने वाले कार्यक्रमों की शृंखला में भाग लेने के लिए उन सभी स्थानों पर पधारने के लिए सहर्ष मान गये। उनकी यह अति पावन उपस्थिति समस्त कार्यक्रमों की शोभा को बढ़ाने वाली थी। वास्तव में यह एक अत्यन्त भव्य यात्रा-क्रम था, जिसे पूज्य श्री स्वामी जी ने अत्यन्त सूक्ष्मता से स्वयं ही निर्धारित किया था।

इस प्रकार पूज्य श्री स्वामी जी अपने दो-तीन भक्त सेवकों तथा मेरे सहित वाराणसी, विन्ध्याचल, नैमिषारण्य, लखनऊ, कनखल (हरिद्वार), बैरागढ़ (भोपाल), कोलकाता, अगरतला (त्रिपुरा) और यहाँ तक कि ढाका और श्री माँ की जन्म-स्थली बांगलादेश में खेओरा भी गये।

कसबा के मन्दिर का श्री माँ के जीवन से अत्यन्त गहन सम्बन्ध रहा है और उनका चित्र अब स्थायी रूप से वहाँ वेदी पर रख लिया गया है जिसकी नित्य पूजाएँ होती हैं। इस पावन मन्दिर के दर्शन के समय पूज्य स्वामी जी वहाँ के वातावरण से अत्यन्त प्रभावित प्रतीत हो रहे थे। उन्होंने भगवान् के विग्रह के समक्ष साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और दिव्य भाव से पूर्ण भजन गाने लगे। पुजारी से आज्ञा ले कर वे मन्दिर के गर्भगृह में प्रविष्ट

हुए, प्रभु-विग्रह के पाद स्पर्श किये और भावसमाधि की अवस्था में मौन धारण किये बाहर आ गये।

कुछ ऊँचाई पर स्थित इस मन्दिर से नीचे लौटते समय पूज्य स्वामी जी अत्यन्त धीरे-धीरे 'कमला सागर' नामक प्रसिद्ध विशाल झील जो कि बांगलादेश की सीमा पर है की ओर चलने लगे। तभी अचानक एक विशालकाय कुत्ता कहीं से आ गया और स्वामी जी के एकदम कदमों के आगे आ कर मानो उनका रास्ता ही रोक कर खड़ा हो गया। हम में से ही एक कुत्ते को भगाने के प्रयास में एकदम से लगभग ठोकर मारने जैसा हुआ। स्वामी जी एकदम व्यग्रता से बोल उठे, ''न-न!'' और तत्काल कुत्ते को संकेत से अपनी ओर बुलाया, उसे प्रणाम किया, उसकी पीठ थपथपाई और कुछ मिठाई भी खाने को दी। स्वामी जी मेरी ओर घूमे और कहा,''सबमें भगवान्!''

मैं स्तब्ध रह गया। यह थे पूज्य स्वामी जी, जीव मात्र के प्रेमी! हम सबके लिए यह एक शिक्षा, एक उपदेश था। एक अविस्मरणीय प्रसंग जो सदैव मेरे मन में इसी प्रकार जीवन्त रूप से स्मरण रहेगा, सतत स्मरणीय!